पुरुषों के लोक–नृत्यों का सौंदर्यात्मक पक्ष : पंजाब के संदर्भ में

डॉ. कुलविंदर कौर
सहायक प्रोफेसर, नृत्य राजकीय कन्या महाविद्यालय, पटियाला

भूमिका

मनुष्य की प्रवृत्ति के अनुसार, हर वह वस्तु जो उसके दिल को भाती है या जिसे वह पसंद करता है, सुंदर कहलाती है। 'हर अच्छी, स्वादिष्ट, मधुर या कोमल वस्तु के लिए हम श्सुंदरश शब्द का सामान्य प्रयोग करते हैं। इसका शाब्दिक अर्थ है खूबसूरत, मनमोहना आदि। इस शब्द से दो भाववाचक शब्द बनते हैं सौंदर्य और सुंदरता। दोनों समानार्थी हैं। इनमें से सौंदर्य का प्रयोग काव्य कला के सामूहिक मूल्यांकन के लिए भी किया जाता है, जैसे काव्य–सौंदर्य, साहित्य–सौंदर्य आदि। उस रूप में यह शब्द कलाकार की संपूर्ण संरचना के रूप में प्रयुक्त होता है।'

हर वह चीज जो आनंद की अनुभूति कराती है, सौंदर्य की धारक होती है। लोक–नृत्य तो आनंद की प्राप्ति के लिए ही किए जाते हैं। इसलिए इनमें सौंदर्य के अस्तित्व को नकारा नहीं जा सकता। कहा जाता है कि नृत्य मन के भावों का प्रकटीकरण है। लोक–नृत्य किसी भी जाति के चरित्र और अंतरात्मा के जज्बातों का, अंगों के तालबद्ध अंदाज और हाव–भावों का प्रदर्शन है। इसमें मन की खुशी के लिए, अंदर के उल्लास को अपने अंगों के द्वारा प्रकट किया जाता है।

अगर पंजाब के लोक–नृत्यों की बात करें तो सौंदर्य इनमें हर पहलू में दिखाई देता हैकृजैसे प्रस्तुति, पहनावा, श्रृंगार, गीत, वाद्ययंत्र, सहायक–सामग्री, मुद्राएँ, चेहरे के हाव–भाव, अंग–चेष्टाएँ और साज आदि। पंजाब के लोक–नृत्य पंजाबी चरित्र और संस्कृति का दर्पण हैं। पंजाबियों के स्वभाव के कुछ खास लक्षण, वीरता, साहस, स्वाभिमान और अलबेलापन, उनके सीधे–सादे लोक–नृत्यों में बहुत सुंदर ढंग से चित्रित होते हैं। ये नृत्य जोशीले, वीर रस से भरपूर और कठोर होते हैं, वहीं इनकी लचक भी फौलाद जैसी होती है। पंजाबी स्वभाव की कठोरता और मिठासकृ दोनों ही एक साथ मिलकर इन नृत्यों में समाई हुई हैं।।

भांगड़ा

भांगड़ा लोक–नृत्य इसीलिए सौंदर्य का धारक है क्योंकि यह पंजाब का प्रमुख लोक–नृत्य है, जो राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर प्रसिद्धि प्राप्त कर चुका है। भांगड़ा करते हुए अलबेले गबरू अपनी अदाओं से जब दिलों को झंकृत करते हैं, तो देखने वाले इसके सौंदर्य से प्रभावित होकर इसमें मग्न हो जाते हैं। पंजाब का यह लोक–नृत्य मानो कोई कहानी सुनाता प्रतीत होता है।

'पंजाब के अलबेले गबरुओं के उभरते जोश, उमंग से भरे उत्साह और छलकती खुशी का प्रतीक होने के कारण, भांगड़ा को पंजाबी लोगों का प्रादेशिक नृत्य माना जाता है। पंजाबी चरित्र के विशेष गुण कृ जोश, साहस, वीरता और अलबेलापन कृ सब इसी नृत्य में समाहित हैं। भांगड़े में एक वीर रस गूँजता है, यह ऐसा नृत्य है जिसमें 'वार' (युद्ध) की भावना छिपी हुई है। जोश और ताल की गूंजती चाल के दृष्टिकोण से भारत का कोई भी लोक–नृत्य इसका मुकाबला नहीं कर सकता। यह नृत्य एक महाकाव्य है। महाकाव्य जैसी सारी विलक्षणता और सौंदर्य इसमें मौजूद है।

इसे नृत्य करने के लिए ताकत, जोश, चौड़ी छाती और साहस की आवश्यकता होती है। इसी कारण यह नृत्य एक साधना है, जिसे पूरे वेग के साथ नृत्य करने की शक्ति केवल पंजाबियों में ही है। पंजाबी हमेशा इस नृत्य को सहज रूप में और गर्व के साथ नृत्य करते हैं।'

'भांगड़ा का पहनावा बाहरी सौंदर्य का प्रतीक है। जब जोशीले और सरसों के पौधे की तरह ऊँचे–लंबे नौजवान, भांगड़े की पोशाक पहनकर खुले बाँहों वाले कुर्ते, मावा लगी हुई लट्ठेदार चादरें, कुर्ते के ऊपर रंग–बिरंगी वास्कटें, सजीली पगड़ी के ऊपर चमकदार आकर्षक पटका बाँधकर, कानों में बड़ी बालियाँ, गले में कंठा और मनकों की माला पहनकर भांगड़ा करने के लिए मैदान में उतरते हैं, तो वह नजारा देखते ही बनता है।'

'पहनावा (वेशभूषा) मानव की मान–प्रतिष्ठा और सौंदर्य की संतुष्टि करता है। इसके रंग–बिरंगे रूप से सामने वाले के कामकाज का अनुमान लगाया जा सकता है। जैसे पंजाब के लोक–नृत्यों में 'पगड़ी' का विशेष स्थान होता है। पंजाब की युवतियाँ युवकों को नकारा कहने के लिए ताना मारती हैंरू'

'तुझे पगड़ी बाँधनी नहीं आती,
तुझे लड़ाई करना नहीं आता,
तुझे हल चलाना नहीं आता,
तेरे घर में क्या बसना है? '

ढाका की 376 बारीक मलमल पंजाबी लोगों में बहुत प्रिय रही है। उसका एक थान (गांठध्गट्ठा) कहा जाता है कि माचिस की डिब्बी में से निकल जाता था (इतनी बारीक होती थी)।

जब इस तरह की बारीक मलमल की पगड़ी को संदूरी (गेरुआध्नारंगी) रंग देकर कोई पंजाबी गबरू (जवान) किसी मेले महोत्सव पर जाता था, तो हर पंजाबी कन्या को वह अपना प्रियतम लगता था।

लोकगीत की पंक्तियाँरू
'मैनू मस्या दे पैण भुलेखे,
तेरी वे संदुरी पंग देख के
लहंगा रंग दे ललारियाँ मेरा,
मित्रा दी पग बरगा ।'

'भंगड़े का संगीत जोशीला और वीर रस से भरपूर होता है। कहरवा ताल पर जब बोलियाँ गाई जाती हैं, तो वे एक अनोखा अनुभव कराती हैं। भंगड़ा लय के तीन पड़ावों (धीमा, मध्यम और फिर तेज) से गुजरते हुए कई रूप भी रचता है। लोक–नृत्य भंगड़ा, लोक–हृदय की धड़कन के प्रतीक लोक वाद्य ढोल की सरल ताल पर नाचा जाता है। ढोल, पंजाबियों की बाहरी और भीतरी भावनाओं की तृप्ति का मूल स्रोत है। इसकी ताल इस प्रकार हैरू'

1	2–3	4	5	6–7	8
धिन	ध ना	धिन	धिन	तना	कत

भांगड़ा का आरंभ

भांगड़े की शुरुआत में यह ताल धीरे धीरे बजती है। नर्तक भांगड़े की ताल के अनुसार पैर और शरीर के अन्य अंगों को हिलाते हुए, एक रूप में अनेक प्रकार की मुद्राओं का प्रदर्शन करते हैं। भांगड़े की टोली में से कोई एक नर्तक या ढोलकी वाला या लड़की के बोल की ध्वनि निकालता है। बाकी साथी आवश्यकता अनुसार उसका साथ देते हैं। आरंभिक समय की एक बोली का उदाहरण प्रस्तुत है

देश पंजाब के मुंडे सुनिए, हिक्कें रखते तनी हुई।
एक साथ होकर बोलियाँ डालते, मूँछें रखते खड़ी हुई।
मिलजुल कर यह डालते भांगड़ा, किसी की डाँट नहीं सहते।
ऐरेदृगैरे से बात नहीं करते, ब्याह कर लाते परियाँ।
वेला धर्म दियाँ जुगों जुग रहण हरियाँ३३.

नृत्य में कई प्रकार के नाटकीय रूप भी किए जाते हैं जो नृत्य को और रोचक बना देते हैं। इसमें रोजमर्रा की हरकतों या चीजों को पेश किया जाता है। नृत्य को नाटकीय रूप देने के लिए सांग भी उतारे जाते हैं, जो हाली, बैल, पंजाबी, रेलगाड़ी, सिपाही, कैदी, पहलवान आदि की शक्ल में दिखाई देते हैं। अभिनय के दौरान 'बल्ले बल्ले', 'शेर ढोलिया' और 'शीदृशी' की आवाजें सुनाई देती हैं। चुटकियाँ और तालियाँ भी बजाई जाती हैं।

कलाकार अपनी कला की प्रस्तुति से अपनी भावनाओं की तस्वीर प्रस्तुत करता है। इस प्रकार जब दृश्य की रचना दर्शक द्वारा ग्रहण की जाती है, तो वही आंतरिक सौंदर्य है। कहा जाता है कि 'रसिक' ही यह निर्णय करता है कि कौन सी वस्तु सुंदर है और कौन सी बदसूरत। रसिक जब कलाकार की रचनात्मक प्रक्रिया से गुजरता है और अपनी पहचान उससे मिलाता है, तो वही स्वीकार की गई वस्तु सुंदरता का दर्जा पाती है। यह नहीं भूलना चाहिए कि 'स्वाद' ही सुंदरता को जन्म देता है। जब तक कोई कृति 'रसवंत' नहीं बन जाती, वह सुंदर नहीं हो सकती।

भांगड़े का संबंध सौंदर्य से बाहरी भी है और आंतरिक भी। इसके लिए किसी विशेष स्थान या तैयारी की आवश्यकता नहीं। यह किसी वाद्ययंत्र या विशेष पोशाक का मोहताज नहीं। इसे जब चाहे, किसी भी खुशी के अवसर पर, अपनी खुशी बाँटने के लिए प्रस्तुत किया जा सकता है। यही इसका आंतरिक सौंदर्य है कि भांगड़ा डालने के लिए किसी बाहरी आडंबर की जरूरत नहीं, बल्कि भीतर की उमंग और उल्लास की आवश्यकता है। भांगड़े के समय जोश और उमंग पैदा करने के लिए ढोल का होना जरूरी समझा जाता है, परंतु मनचले युवक जब नृत्य के नशे में होते हैं तो बिना ढोल के भी भांगड़ा डाल लेते हैं। संगीत की कमी को वे मुँह से जोरदार आवाज निकालकर बकरियाँ पुकारकर, किलकारियाँ मारकर और बाघियाँ डालकर पूरी कर लेते हैं, और ताल का काम तालियों और कदमों की आवाज से पूरा हो जाता है।

भांगड़ा रोजमर्रा के जीवन और मेहनतकश पंजाबियों के कामदृधंधों से उपजा है। इसमें उनकी मेहनत, ताकत और जोश शरीर की हरकतों में झलकता है। भांगड़े की असंख्य मुद्राएँ हैंकृगोल घेरे में, आमनेदृसामने, आगेदृपीछे, दाएँदृबाएँ, ढोली के चारों ओर, एक–दूसरे के कंधों पर चढ़करकृहर

दिशा में नाच सकते हैं। खास तौर पर पैरों, बाहों, हाथों, उँगलियों, एड़ियों, कंधोंदृघुटनों, कमर, चेहरे (आँख, नाक, होंठ आदि) की हरकतों से संबंधित मुद्राएँ इसकी खासियत हैं।

भांगड़े में ढोल की लय के साथदृसाथ कई लोकदृसाज प्रयोग होते हैं। हर साज का अपना महत्व है। जैसेकृकाटो, जिसे गिलहरी की तरह बनाया गया है, चंचलता का प्रतीक है। हाथों में पकड़े 'खूँडे' पंजाबी युवाओं की अलग पहचान बनाते हैं। प्रसिद्ध भांगड़ा कलाकार बलबीर सिंह सेखों के शब्दों मेंकृ'जब हम 26 जनवरी को भांगड़े की वर्दी और खूँडा लेकर खड़े होते थे, तो बाकी राज्यों के लोग देखकर कहते थेकृ'यह है पंजाब'।' ढोल, साप, काटो, चिमटा, खूँडा, नगौजा, आल्गोजा आदि की ध्वनियाँ मिलकर भांगड़े को अद्भुत रूप देती हैं।

भंगडे का अलगोज़े से सम्बन्ध केवल मंच प्रस्तुति के समय ही बना है। बैसाखी के त्यौहार में न अलगोज़ा था, और न ही अंग संचालन के समय •ाने की प्रथा थी। नाचते हु, कमर के साथ मोटे घुंगरु बांध लिए जाते थे।

मलवई गिद्धा

यह सौंदर्य, कला और मानवीय रुचि का आवश्यक अंग है। पंजाब में मालवे के पुरुष भांगड़े की तुलना में गिद्धा अधिक पसंद करते हैं। पुरुषों का गिद्धा लगभग स्त्रियों के गिद्धे जैसा ही होता है, पर इसमें ढोलकी के साथ तुंबा, साप, काटो, चिमटा, घड़ा, गड़वा, इकतारा, नगौजा, सारंगी आदि मिलकर इसे अन्य लोकदृनृत्यों से अलग बना देते हैं।

इसमें वाद्ययंत्रों का विशेष महत्व हैकृढोलकी प्रधान होती है, अन्य साज उसकी तान को रंग देते हैं। कलाकार अक्सर साँप, तुंबा, चिमटा आदि सीखकर धीरेदृधीरे नृत्य में शामिल होते हैं।

मलवई गिद्धा में नाटक के सभी गुणों का समावेश है। यह सौन्दर्य का आंतिरिक प{ा है कि इस में से कहानी के रस की अनुभूति होती है। नाच }ारा सामाजिक ताने बाने तक पहुंचा जाता है। पंजाबी किस्साकारों ने अपने किस्सों मे नाटक के सारे तत्वों का समावे'ा करके नाटकि, प्रभाव की रचना का अचेत और सुचेत यत्न किया है।

मलवई गिद्धा लोकदृनृत्य होने के बावजूद नाटकीय गुणों से भरपूर है। इसमें किस्सों की बोलियाँ डाली जाती हैंकृजैसे हीरदृरांझा, सोहणीदृमहिवाल, मिर्जादृसाहिबाँ, प्रतापी नार आदि। यह नृत्य बिना विशेष मंच के, खुले मैदानों में, मेलोंदृठेलों में कहीं भी प्रस्तुत किया जा सकता है। इसकी सहजता ही इसका सौंदर्य है।

'देवी माता वर की दाता,
अतर–चतर की रानी,
भूखों को भोजन देती,
प्यासों को जल–पानी।
गाने वालों को गाने का वर देती,
पढ़ने वालों को वाणी,
मैं भी तेरा भक्त कहलाऊँ,
अपना बनाकर जानी।
स्मरण करूँ मैं तेरा,
बहुड़ ज्वाला रानी।'

इसके बाद बोलने वाला बोलियों द्वारा विषय की जानकारी देता है। फिर गिद्धा किस अवसर पर किया जाना है, उससे संबंधित विषयों को अपनी बोलियों में शामिल किया जाता है। इसे गायन, वादन और नृत्य द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। 'आंगिक, वाचक, सात्विक और आहार्यकृये चारों अभिनय की विधाएँ नृत्य की आत्मा हैं, और नृत्य की मुद्राओं में अभिनय का आधार निहित है।' इस प्रकार मलवई गिद्धा इन गुणों का धारण करता है। इसमें हर प्रकार के रस की प्राप्ति होती है, जो कि सौंदर्य का ही एक पहलू है।

मलवई गिद्धे में शृंगार रस की प्रधानता होने के साथ–साथ हर रस की अनुभूति होती है। इसमें औरत को उसकी बोली द्वारा कभी चिढ़ाया भी जाता है और रचा भी जाता है। शादियों में जब मेलणें गिद्धा डालती हैं और वे अपनी अदाओं से मर्दों को बोली बोलने के लिए ललकारती हैं, तो इंतजार में बैठे नौजवान गिद्धे के घेरे में कूद पड़ते हैं और वहाँ पर आपस में आमने–सामने जिद की बोलियाँ शुरु होती हैं।

कुछ बोलियाँ (गाने की पंक्तियाँ) का अनुवादरू

'सुन ओ मेलणें नाचने वालीए, मैं तेरा गुणगान गाऊँ,
बुरी बात नहीं बोलूँगा, गिद्धे में बढ़कर बोली पाऊँ।
पाला सिंह मेरा नाम है सुंदरी, मैं गाँवों में झंडे गाडूँ
गाँव तो हमारे खास हैं, सब कुछ खुलकर सुनाऊँ।
बाग में फूल खिला कहे तो तोड़ लाऊँ....

दाढ़ी आलया पौनां बोलियां
`, तेरा कम माड़ा
तेरे वर• पढ़न पोथियाँ
तड़के फेरदे माला
मेरी बोली दा मोड़ करी सरदारृ

इस तरह चौबर (युवा) इतने बेशर्म हो जाते हैं कि मजाक के मूड में आकर वे घाघरे पहनकर औरत का वेश बनाकर नाचने लगते हैं। स्त्रियों के गिद्धे (लोकनृत्य) में पुरुषों के साथ ऐसे संवाद की मिसाल मालवा क्षेत्र में आम मिलती है। शृंगार रस और हास्यरस इस गिद्धे की जान है।

इसके बाद माघ (पौष–माघ) की चाँदनी रातों में गरमागरम 'चाय' पीने के बाद वे किसी कन्या की कल्पना करके उसके सौंदर्य का जिक्र करते हैं और आनंद लेते हैं। फिर दाँत कौड़ियों जैसे, होंठ पतासों जैसे, बातें शकरपारों जैसी बोलियाँ इस गिद्धे को कलात्मक रूप प्रदान करती हैं। कलाकार और दर्शक की कल्पना में उस कन्या का सौंदर्य रचा जाता है।

'मालवई बोलियों की नायिका नाभि तक कुर्ती और चौड़े घेर वाले गरारे पहनने वाली नखरेली औरत होती है और उसके सौंदर्य पर फिदा होने वाले 'भौंरे' घर–बार लुटाकर नंगे हो चुके आशिक होते हैं। जिनकी भगवान से एक ही शर्त होती है दृ या तो भगवान उन्हें मिलन करा दे या मुक्ति दे।' जब मिलन असंभव हो जाता है तो यह मालवई बोलिकार (गीतकारध्गायक) भगवान को ललकारता है।'

यह नृत्य मानव मन की वह स्थिति है जिसमें अपनी उमड़ती हुई भावनाओं से विवश मनुष्य अपने आंतरिक भावों को अंगों की गतियों की लिपि के माध्यम से ऐसी भाषा में प्रस्तुत करता चला जाता है कि वह उसके लिए स्वाद, आनंद और रस का रूप धारण कर लेती है, और दर्शक के लिए भावपूर्ण, श्रद्धा से भरी भाषा तथा मधुर स्वाद बन जाती है।

इसीलिए यह नृत्य भेदभावों से ऊपर उठकर बाहरी और आंतरिक सौंदर्य की उत्पत्ति करता है। यह लोकनृत्य यह नहीं देखता कि इसमें भाग लेने वाला किस जाति का है या किस धर्म का है। हिंदू, मुस्लिम, सिखकृइन धर्मों को मानने वाले किसी भी समुदाय के लोग बिना किसी भेदभाव के इसमें शामिल होते हैं। यह पूरे समाज का एक सामूहिक नृत्य है जिसमें प्रेम और भाईचारे की भावना प्रत्यक्ष दिखाई देती है।

इसमें कलाकारों की संख्या का कोई निश्चित हिसाब–किताब नहीं होता। इसमें इनकी संख्या पच्चीस भी हो सकती है, तीस भी और इससे ज़्यादा भी। इसमें कलाकारों की उम्र पर भी कोई पाबंदी नहीं होती। छोटी उम्र से ही गिद्धा की टीम में शामिल होकर सीखते हैं और फिर उसी को समर्पित हो जाते हैं। यह समर्पण प्रेम की भावना का प्रतीक है, जो अपने विरसे (परंपरा) से जुड़ा हुआ है। चठ्ठे शेखवां के बाबाओं के गिद्धे के कलाकार मेहर सिंह और लाल सिंह अपनी युवावस्था से लेकर अंतिम समय तक गिद्धे में शामिल रहे। ऐसे ही कलाकारों की बदौलत लोक विरसा जीवित रहता है।

मालवे के लोगों का पहनावा बहुत सादा होता है। यह सफेद कुर्ता और चादरा होता है, और लड़ वाली प•ड़ी बाँधी जाती है। सोने की जंजीर या बटन कुर्ते पर लटकते हैं। गले में कंठा, तिब्बती वाली माला, और कानों में मुंदरे पहने जाते हैं। पैरों में जरी वाली नोकदार जूती पहनी जाती है। किसी भी तरह के बनावटीपन से परहेज किया जाता है और पारंपरिक पहनावा ही पहना जाता है। इस तरह इसमें अपनापन बना रहता है। यही इसका बाहरी सौंदर्य है।

यह मलवई गिद्धे (लोक नृत्य) की सुंदरता ही है कि पूरी–पूरी रात गिद्धा करने के बाद भी दर्शकों से अपने अच्छे–बुरे बोलों के लिए माफी माँगकर भूल बख्शा दी जाती है। अपनी ढाणी (गाँवध्घर का पता) बताकर अखाड़े के रसिकों की धूल को अपने माथे से लगाया जाता है। नम्रता प्रकट करते हुए फिर मिलने की कामना की जाती है। इस स्वीकार के साथ सबकी भलाई की कामना करते हुए सबसे विदा ली जाती है।

'ढाईए–ढाईए–ढाईए
दुनिया सारी बिछड़ चली, पकड़कर किसे बिठाइए
अक्षरों की समझ न रखने वाले दास को अनपढ़ जमाना कहे
सुन–गिनकर ही बोलियाँ गाई जाती हैं, जो दिल को भा जाएँ
पाल भुलर का गाँव संघेड़, उसके साथ जत्था बनाएँ
ढाणी बाँधकर गिद्धे वालों की फिर मेले में आएँ
यदि कोई गलती रह गई कथा में, संगत से भूल बख्शाईए
संगत के चरणों की धूल उठाकर माथे पर लगाइए
जीवित रहकर अब परायों को भाई बनाएँ
सतगुरु कृपा करें, गिद्धे का आनंद पाएँ३..'

'इस तरह मलवाई गिद्धे के कलाकार अपने आप को अपनी मिट्टी से अलग नहीं करते और न ही अपने आप पर घमंड करते हैं। इनका यही बड़प्पन ही इनकी सुंदरता में चार चाँद लगा देता है।'

टिपरी

टिपरी नृत्य की सुंदरता का पक्ष इसकी सरलता, सामूहिकता और सहजता जैसे गुणों में है। यह देखने में सहज और आनंददायक प्रतीत होता है। इसका सामाजिक जीवन से गहरा संबंध है। इस नृत्य को करने के लिए सुडौल शरीर और मानसिक चपलता की आवश्यकता पड़ती है। क्योंकि इसमें रस्सियों के साथ की जाने वाली शारीरिक कलाबाजियों में यदि किसी एक से गलती हो जाए तो रस्सियाँ उलझ तो जाएँगी लेकिन उन्हें सुलझाने की कोई संभावना नहीं रहेगी। इस नृत्य की सुंदरता इसी में है कि जिस तरह नाचते–नाचते रस्सियाँ उलझ जाती हैं, उसी तरह वे सुलझ भी जाती हैं। इसलिए नर्तक का मानसिक रूप से सजग रहना बहुत आवश्यक है। हर नृत्य की तरह यह भी धीमी गति से आरंभ होकर ढोल की लय और बाँसुरी के सुरों के साथ आगे बढ़ता जाता है। यह नृत्य जोड़ों में किया जाता है। गोल घेरा बनाकर जोड़ियों में, जैसे गत्तका खेला जाता है, वैसे ही इस कला को नृत्य मुद्राओं में प्रस्तुत किया जाता है। जब दो व्यक्ति इस क्रिया को पूरा कर लेते हैं, तो वे घेरे के अंदर आ जाते हैं। इस तरह घेरे के अंदर व्यक्तिगत क्रियाओं के साथ यह नृत्य चलता है। जैसे–जैसे ढोल की ताल ऊँची और तेज होती जाती है, वैसे–वैसे नृत्य की गति भी बढ़ जाती है।

इस नृत्य में ताल के साथ एकस्वर होकर किए गए क्रियाओं में लचक और धमक पर अधिक जोर दिया जाता है। इसमें अदाओं से अधिक मानवीय मन की बिखरी हुई भावनाओं के प्रकटाव को महत्व दिया जाता है। ढोलक और बाँसुरी के सुरों के साथ–साथ जब डांडिया आपस में टकराती हैं, तो जो ध्वनियाँ उत्पन्न होती हैं वे एक आध्यात्मिक वातावरण का निर्माण करती हैं। इसमें मग्न नर्तक तो स्वयं को भूल जाते हैं और देखने वाला भी स्वयं को भुलाए बिना नहीं रह पाता। नृत्य करते समय ऐसा प्रतीत होता है मानो रस्सियाँ स्त्री के बालों में लगी फूलों की वेणी हों, जो कभी उलझ जाती हैं और कभी सुलझ भी जाती हैं। इस प्रकार यह नृत्य श्रृंगारिक सौंदर्य का अनुभव भी कराता है।

'टिपरी नृत्य में बाँसुरी का प्रयोग ही इसका सौंदर्य पक्ष है। पंजाब के बाकी लोक–नृत्यों में अलग–अलग लोक–साजों का उपयोग होता है। ज्यादातर अल्गौजों का प्रयोग इन नृत्यों को सुरों की लय प्रदान करता है। लेकिन टिपरी ही ऐसा नृत्य है जिसमें बाँसुरी का प्रयोग किया जाता है। इसकी धुनें इतनी मधुर होती हैं कि आपके भीतर मिठास और सुरेलापन भर देती हैं। इसके साज और छड़ियाँ (सोटियाँ) इसे बाकी लोक–नृत्यों से अलग बनाती हैं।

पंजाब के युवक जज्बे से भरे हुए लेकिन साधारण जीवन जीने वाले होते हैं। इसलिए पहनावे के मामले में सादगी रखते हैं। इन लोक–नृत्यों के लिए उन्हें किसी खास तैयारी की जरूरत नहीं होती। वे जिस पोशाक में होते हैं, उसी में नृत्य प्रस्तुत करते हैं, लेकिन एकरूपता और बाहरी आकर्षण के लिए समान कपड़े पहने जाते हैं। चूँकि इसे 'पेशावर का कहा जाता है, इसलिए इसका पहनावा कमीज–सलवार है। पंजाबी नृत्य इतने स्वाभाविक हैं कि इनके नृत्य करने के लिए किसी विशेष पोशाक, वेशभूषा, साज–सज्जा या श्रृंगार की आवश्यकता नहीं होती। जो पोशाक आम पंजाबी गबरू और मुटियारें (लड़कियाँ) पहनती हैं, वही इन नृत्यों की वेशभूषा है। एकरूपता के

लिए थोड़ा बहुत मेल–जोल ही पर्याप्त है। रंगों और कपड़ों का कोई विशेष चुनाव नहीं किया जाता। यही कारण है कि ये लोक–नृत्य बिना किसी पूर्व तैयारी के, कहीं भी नाचे जा सकते हैं। दरअसल, खुशी के हर अवसर और मेले–त्योहार पर पंजाब दुल्हों की तरह सज उठता है। इसलिए इन अवसरों पर जब पंजाबी गबरू और मुटियारें उमंग से भर जाते हैं और जज़्बे उभर आते हैं, तो वे खड़े–खड़े ही नाचने लगते हैं।'

झूमर

झूमर पश्चिमी जांगलियों का सबसे प्रिय लोक–नृत्य है। इसका रावी और सांदलबार के इलाकों से गहरा संबंध है, जिसे 'आशिकों की धरती' भी कहा जाता है। इनका निवास घास–फूस से बने छप्परों के नीचे रहा है। लेकिन ये लोग शारीरिक रूप से तंदुरुस्त और ताकतवर रहे हैं। लहराती वनस्पति को देखकर जब इनके दिल उमड़ते, तो ये सीधे–सादे लोग ढोल की आवाज सुनते ही खुले स्थान में इकट्ठा हो जाते और झूमर की लय से पूरी फिजा गूंज उठती। चांदनी रातों में जवानी नशे में डूब जाती है। जांगली लोग दिन भर जितनी कड़ी मेहनत करते, रात को उतनी ही कोमलता और नजाकत से छबीला नृत्य करते। झूमर की दिलकश अदाएँ जांगली लोगों के भीतरी सौंदर्य और प्रेम की गवाही देती हैं।

'पंजाबियों के किसी भी लोक–नृत्य का सौंदर्य पक्ष ताल के साथ जुड़ा है, और पंजाब में इसका रूप है कृ ढोल। यह वाद्ययंत्र अपनी गड़गड़ाहट भरी आवाज और लय–ताल के कारण पूरे पंजाब में प्रसिद्ध है। इसे बजाना कोई 'खालाजी का आँगन' नहीं है, बल्कि इसके लिए मजबूत शरीर और ताक़त की जरूरत होती है। जब यह बजाया जाता है तो किसी को बुलाने की आवश्यकता नहीं पड़ती, लोग इसकी ऊँची आवाज और दिल को झकझोर देने वाली धुन के पीछे–पीछे स्वयं खिंचे चले आते हैं। जब झूमर नृत्य इसकी ताल के साथ एक स्वर बनाता है, तो वह दृश्य मनुष्यों को ही नहीं, बल्कि जानवरों को भी मस्त कर देता है।

जनजातीय लोगों का यह प्रिय वाद्य है और वे इसे बड़े ही मन से बजाते हैं। नाचना, गाना, ढोल बजाना, पशु पालना और मेलों में रंगरलियाँ मनाना उनके प्रमुख शौक होते हैं। कहा जाता है कि 'जन्म लेते ही जांगली बच्चे को मानो ढोल की ?ुट्टी मिलती है।' पंजाब में सबसे खूबसूरत ढोल बजाने का मान भी इन्हीं 'झना के वासियों' को है। गहरी रात में बड़े–बड़े ढोल तीन–तीन मीलों तक सुनाई देते हैं।

ढोल की लुभावनी तालें सुनकर जांगली लोग अपने हाथ के काम छोड़कर खड़े हो जाते। उन्हें ढोल की तालों पर ऐसी महारत होती कि वे अड़ियल घोड़ियों को भी नचा देते। संगीत के ऐसे प्रेमी जब स्वयं ढोल पर नाचते हैं, तो पूरा जंगल महक उठता है। जंगल की इस महक का नृत्य है कृ झूमर।' इस प्रकार यह आंतरिक तृप्ति और भीतरी सौंदर्य का ही प्रकटीकरण है कि ढोल की तालें और झूमर जंगलियों की रगों में रक्त की तरह बस गई हैं। यह उनके अंग–अंग में धड़कता है। खुशी, आनंद, प्रेम दृ यह सब सौंदर्य की अनुभूति कराते हैं, चाहे वह बाहरी हो या आंतरिक। सावन के मौसम में जब चरागाहें हरी–भरी हो जाती हैं, तो भैंसों और गायों को चरते हुए देखकर इन जंगलियों के मनों की उमंगों में तरंगें उठती हैं और वे उल्लास और खुशी में विवाह रचाते हैं तथा दोगुनी–तीगुनी खुशी में झूम–झूम कर झूमर नृत्य करते हैं। इसकी झूमती हुई मुद्राओं के कारण ही

इसका नाम 'झूमर' पड़ा। इस प्रकार सांदलबार के लोगों के चाव और मस्तियों का झूमर द्वारा प्रकटीकरण देखने वाले को किसी और ही दुनिया में ले जाता है।

झूमर आदिवासी परिवारों में जन्मजात होता है, क्योंकि वे इसमें अपने–आप शामिल होते जाते हैं और सीखते जाते हैं। चांदनी रातों में हर बच्चे को उसकी माँ झूमर के लिए प्रेरित करती है। इसलिए झूमरियों की संख्या निश्चित नहीं होती, कोई भी इसमें दायरे में शामिल हो सकता है। ढोल के चारों ओर खड़े होकर, एक कदम आगे बढ़ाकर, बाएँ से दाएँ या दाएँ से बाएँ पीछे की ओर घूमते हैं और फिर पूरा चक्कर लगा लेते हैं। मुँह से निकली 'छू–छाह' जैसी आवाजें इसे सांसारिक से अलौकिक बना देती हैं।यह गीत गाते हुए दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बंद करके छाती के आगे रखते हैं और झटका मारते हैं। वे ढोल बजाते हैं और बोलियाँ लगाते हैं। ढोल की ताल के साथ शरीर की गति भी बदलती रहती है। यह धीमी गति से शुरू होकर धीरे–धीरे तेज हो जाती है। इसका लहरदार अंग इसके सौंदर्य को और बढ़ा देता है।

मुद्राओं में समानता ही इस लोक–नृत्य की सुंदरता है। बाकी लोक–नृत्यों में नर्तक अपने व्यक्तिगत एक्शन कर सकते है। जैसे भांगड़ा में, गिद्धा में बीच में आकर किसी भी तरह की मुद्राएँ और अदाएँ दिखाई जा सकती हैं। लेकिन झूमर में पूरी टोली के हाथ, पैर, बायें, दायें, नीचे, ऊपर सब एक साथ और एक ही ताल पर चलते हैं। नृत्य के सामूहिक उल्लास में बंधे होने के कारण प्रतीत होता है कि नर्तकों ने यह समानता बहुत अभ्यास के बाद प्राप्त की हो। हर गाँव की माँ अपने पुत्र को अच्छे झूमर के लिए प्रोत्साहित करती है। यदि वह किसी अदा में बाकी झूमरियों से चूक जाए, तो उसे बहुत डाँटती है।' इस प्रकार सम्मानता ही इसका वह सौंदर्य पक्ष है, जो इस नृत्य को बाकी लोक–नृत्यों से अलग करता है।

ढोल वाला भी झूमरियों के साथ मस्त हो जाता है। अपनी ही मौज में वह खूंटी को ऊपर की ओर उछालता है और फिर पकड़ लेता है, पर ऐसा करने से ताल में कोई फर्क नहीं आने देता। इस तरह ढोली भी ताल के साथ अपना कमाल दिखाता है। इससे झूमरियों का जोश और भी बढ़ जाता है और 'चीणा छिड़ता' है। खूंटी और छड़ी अपना कमाल दिखाती हुई और भी तेज हो जाती हैं। झूमरियों में भी तेजी आ जाती है। वे तालियाँ बजाते हैं और जमीन पर एड़ियाँ मारते हुए एक स्वर में गाते हैंरू

'चीणा ईं छड़ीदा लाल!
चीणा ईं छड़ीदा लाल !!'

इस तरह इससे पूरा माहौल मदहोश हो जाता है और दिलों में उतरता चला जाता है। पंक्ति में झूमर करने वाले तो झूम ही रहे होते हैं, लेकिन पंक्ति को देख रहे लोग भी बिना झूमे नहीं रह सकते।

आंतरिक जज्बातों में हलचल पैदा करने वाला यह नाच खून की गति को तेज कर देता है। अंत तक केवल जिद्दी झूमर ही बाकी रह जाते हैं, अधिकतर तो थक कर बैठ जाते हैं। इसके साथ 'लंबे गीत' गाए जाते हैं, जिनमें भैंस–बकरियों, गायों, घोड़ों, बटेरों, तीतरों, कीकरों, फलाहियों के जिक्र से लेकर प्रेमियों के मिलने की तड़प, ओखली में कूटना और अनाज झाड़ने आदि का जिक्र करने वाले भाव होते हैं।

झूमर का गीत इस प्रकार है

लांघ आ जा पत्तन झनां का, यार लांघ आ जा पत्तन झनां का।
सिर सदका मैं तेरे नाम का, यार सिर सदका मैं तेरे नाम का।
मेरे कौवे ने छज्जे पर बोला, मेरा तत्तड़ी का दिल डोला।
लांघ आ जा...

यह नृत्य का सौंदर्य पक्ष यह है कि इसे पुरुष करते हैं, लेकिन इसमें उल्लेख स्त्री के जज़्बातों का किया जाता है। औरतें तो घेरे के बाहर बैठकर उन्हें दाद देती हैं, और अगर कोई झूमर करने वाला थक जाए, तो औरतें उसका मजाक उड़ाते हुए कहती हैं कि इसने 'माँ का दूध नहीं पिया, इसलिए यह थक गया।'

झूमर नृत्य बाहरी सौंदर्य और आंतरिक सौंदर्य की दृष्टि से मानवीय भावनाओं की भूख को संतुष्ट करता है। इसकी अदाएँ, मुद्राएँ, ताल, संगीत और परिधान एक–दूसरे की प्रशंसा करते दिखाई देते हैं। सरल–सादा जीवन जीने वाले ढाणियों (गाँवों) में रहने वाले ग्रामीण लोग जब यह नाजुक झूमर नृत्य करते हैं, तो विशेष परिधान धारण करते हैं।

झूमर खेलने वाले पैरों में नोकदार जूती या तिल्लेदार जूती पहनते हैं। कंधे पर धारीदार चादर और गले में टेढ़े कट वाला लाहौरी कुर्ता पहना जाता है। सिर पर ऊँची तुरली या फरली वाली पगड़ी बाँधी जाती है, जो नृत्य करते समय हवा में लहराती हुई प्रतीत होती है। झूमरियों (नृत्य करने वालों) के लिए पैरों में घुँघरू बाँधना आवश्यक होता है। जब वे जमीन पर एड़ी मारते हैं या पंजे उठाते हैं, तो घुँघरू एक विशेष रंग (संगीतमय ध्वनि) बाँधते हैं। झूमर का यह परिधान, झूमर की अदाओं के साथ तालमेल बनाकर चलता है। लगभग हर झूमर के प्रारंभ में इस परिधान की महत्ता से संबंधित कई बोल गाए जाते हैं, जैसेरू

तेरे हाथ माही का गाना छौहरा
ओ रावी वाले छौहरा–छौहरा
तेरे सर पर लहरें आईं
ओ रावी वाले छौहरा–छौहरा
तेरी कुर्ती पर झुम्बर सजी
ओ रावी वाले छौहरा–छौहरा
तेरे चोले पर पैलां पायियाँ
ओ रावी वाले छौहरा–छौहरा
तेरी जूती लहरें पायियाँ
ओ रावी वाले छौहरा–छौहरा
तेरे हाथ माही का गाना
ओ रावी वाले छौहरा–छौहरा'

गतका

जिस भी कला में रस होता है, वही सौंदर्य की धारक होती है। गतका एक ऐसा लोक–नृत्य है जिसमें वीर रस की प्रधानता रहती है। क्योंकि इसमें युद्ध का प्रदर्शन किया जाता है, इसलिए इसमें तलवार, ढाल, तीर और भाले आदि हथियारों द्वारा दुश्मनों से मुकाबले की मुद्राएँ दिखाते हुए ढोल और नगाड़े की थाप पर गतका प्रस्तुत किया जाता है। यह एक पारंपरिक नृत्य है, जो सीधे धर्म से जुड़ा हुआ है। यही इसका आध्यात्मिक सौंदर्य है।

'युद्ध–नृत्य मुद्राओं वाला यह नृत्य आग के चारों ओर गोल घेरे में तलवारें लेकर, ढोल की ताल और तलवारों की खनक पर नाचा जाता है। खुले मैदान में ढोल की धीमी ताल पर धीमी नृत्य–मुद्राओं के साथ यह नृत्य आरंभ होता है। नर्तक गोल घेरे में चलते हुए, तलवारें घुमाते, छलांग लगाते और काल्पनिक दुश्मन से भिड़ते हुए दिखाई देते हैं।' ढोल वाला घेरे के बीचों–बीच खड़ा होता है।

यह नृत्य वीर रस से भरा हुआ नृत्य है, जिसमें युद्ध की भावना समाई हुई है। लय–ताल की घुमावदार चाल और जोश इसका ऐसा गुण है, जिसका मुकाबला कोई भी लोक–नृत्य नहीं कर सकता। यह अपने आप में एक महाकाव्य है। महाकाव्य की विशिष्टता और सौंदर्यात्मकता इसमें प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देती है। इसकी प्रस्तुति के लिए मजबूत शरीर, चौड़ी छाती और बहादुरी की जरूरत होती है। यह नृत्य वास्तव में एक साधना है, जिसे पूरे वेग में केवल पंजाबी ही नाचने का साहस रखते हैं।

'इसमें ढोल की लय के अलग–अलग पड़ावों पर नृत्य प्रस्तुत किया जाता है, जो अत्यंत जोश और वीरता से भरपूर होता है। इसे जोड़ों में एक–दूसरे के साथ मिलकर प्रस्तुत किया जाता है। ढोल की मध्यम तालों पर नृत्य धीमी गति से आरंभ होता है। गोल घेरे में आगे बढ़ते हुए दो नर्तक भीतर कूद पड़ते हैं। वे आमने–सामने जोड़ी बनाकर गत्तका खेलने की कला को नृत्य मुद्राओं में प्रस्तुत करते हैं। जब दो व्यक्ति अपना नृत्य–अभिनय कर लेते हैं, तो वे घेरे के भीतर आ जाते हैं। इस प्रकार घेरे के अंदर एक प्रकार से व्यक्तिगत अभिनय चलता रहता है।'

'इसका पहनावा और अस्त्र–शस्त्र बाहरी सौंदर्य का हिस्सा हैं। पर इसकी प्रस्तुति में भावना आंतरिक सौंदर्य का हिस्सा है। होला–महल्ला, वैशाखी और गुरुपर्व के अवसरों पर इकट्ठी हुई लोगों की भीड़ के सामने निहंग सिंहों और अन्य योद्धाओं द्वारा अपनी युद्ध परंपरा को दोहराया जाता है। कलियों वाला कुर्ता, कच्छेरा, लकड़ी से बंधा पटका और सिर पर दुमाला सजाया जाता है। ढाल, तलवार आदि से सजे सिंह जब इस नृत्य की प्रस्तुति के लिए मैदान में उतरते हैं तो उन्हें देखना ही बनता है। संगीत और हथियारों का संचालन एकसाथ इतना सुचारु लगता है कि गतका खेल से ज्यादा पारंपरिक नृत्य के रूप में दृष्टिगोचर होने लगता है। इसकी प्रस्तुति करते हुए आंखों पर पट्टी बांधकर साथी की आंख में तलवार से सुरमा डाला जाता है, हाथ पर रखे फल काटे जाते हैं और आग के बीच से निकला जाता है।' जैसे–जैसे ढोल की ताल गरजती हुई ऊँची होती जाती है, •तका नृत्य की मुद्राएँ और अंग–लहरियाँ भी तेज होती जाती हैं। इसमें कलाकार ऊँची–ऊँची चीखें मारते हैं और युद्ध की हुंकारों की नकल करते हैं। पूरे जोश और धमक के साथ यह नृत्य अपने शिखर पर पहुँचता है और पूर्णता प्राप्त करता है। इसे हमले की तैयारी या विजय की खुशी से संबंधित एक 'युद्ध–नृत्य' के रूप में परिभाषित किया जाता है। इस प्रकार, आंतरिक भावनाओं से दर्शक मंत्रमुग्ध हो जाते हैं और इसे देखते हुए स्वयं को युद्ध के मैदान में अनुभव करते हैं। यही इसका सौंदर्य पक्ष है।

लुड़ी

लुड़ी लोक–नृत्य की सुंदरता यह है कि यह खुशी का प्रतीक है। पश्चिमी पंजाब में विजय की खुशी में लुड़ी खेली जाती थी। इस नृत्य की मस्ती पूरे वातावरण को नशा–सा कर देती है। यह नृत्य गाँवों में किसी भी खुले स्थान पर गोल घेरे में चाँदनी रातों में किया जाता है। 'झिलमिलाते

तारों की लय में लुड़ी खेलने वाले मस्त हो जाते हैं।' लुड़ी में मस्ती और जवानी के नशे का बहुत ही शौकीन प्रदर्शन होता है। कहते हैं कि इस नृत्य में धरती के दिल की धड़कनें सुनी जा सकती हैं।

इस प्रकार यह नृत्य शृंगार रस का प्रवाह करता हुआ सौंदर्य की पूर्ति करता है। लुड़ी आनंददायक उल्लास से भरपूर नृत्य है, जो खुशी के अवसरों पर किया जाता है। यह किसी मुकदमे या किसी भी प्रकार की जीत की खुशी में ढोल की ताल पर किया जाता है। नर्तक कभी एक पैर पर नाचते हैं, कभी दूसरे पैर पर, और बाहों को लहराते हैं। पैर बदलते हुए हाथ ऊपर उठाए रखते हैं। आगे–पीछे झुकते हुए, घेरे में घूमते हुए वे आगे बढ़ते जाते हैं। कंधे मटकाना और कमर को लचकाना उनकी खास अदाएँ होती हैं। अपने ही पैरों पर बैठकर लट्टू की तरह घूमने में इन्हें महारत हासिल होती है। यह केवल ढोल की ताल पर प्रस्तुत किया जाता है। इसके साथ अलगोजा और चिमटा भी बजाया जाता है। इसका सौंदर्य पक्ष यह है किकृ

'भले ही लुड़ी के साथ गीत नहीं गाए जाते, लेकिन ह्रदय की अथाह खुशी और उमड़ते उत्साह को अंगों की थिरकन और लहराहट में रूपायित किया जाता है।' यह लोक–नृत्य ढोल की साधारण तालों पर प्रस्तुत किया जाता है। पर अंग लहरियाँ खुली होती हैं कृ कोई जैसा चाहे कर सकता है। लूड़ी नाच में पहले ताड़ी सीने के आगे मारी जाती है, घुटनों को हिलाते हैं और आँखें झपकाते हुए घेरे में घूमते रहते हैं। ढोली के तोड़ा देने पर नृत्य की मुद्राएँ बदल जाती हैं। फिर शरीर के उपरी हिस्से को झुकाकर घेरे के अंदर ताली मारी जाती है, फिर छाती के आगे और फिर घेरे के बाहर झुककर ताली मारी जाती है। पहले दायाँ पैर और बाँह उठाई जाती है, फिर इसे दोहराकर हाथ–पैर बदल लिए जाते हैं। इस प्रकार नाचते–नाचते नर्तक की मोड़य पैर और ताली के कार्य में समानता आ जाती है। इस लोक–नृत्य की विशेषता यह है कि इसमें लोक गीत नहीं गाये जातेय मस्ती में आये नर्तक अपने मुँह से कई प्रकार की आवाजें निकालते हैं जैसेरू

'श श श श
ही ही ही
हो हो हो
ओ आ आ ३
या
एली एली एली !!!
हड़िपा हाय! हड़िपा हाय!!

आदि निकालकर रस भर लेते हैं।' और ये आवाजें इसके जोश में वृद्धि करती हैं तथा मानवीय सहज स्वाद की झलक भी देती हैं। यही सम्मानता आपसी भाईचारे और एकता की भावना में परिपक्वता लाती है।

लुडी एक सरल लेकिन बेफिक्र नृत्य है। इसमें खुला कुर्ता, चादर और सिर पर पगड़ी बाँधी जाती है, एक ओर झूमर और लटें छोड़ दी जाती हैं। इसमें जोड़ियाँ बनाकर एक–दूसरे से मुख़ातिब हुआ जाता है। लुडी–नृत्य में अंग–अंग लचकता है और आँखों से बातें की जाती हैं। यह नृत्य शोख़ नखरे और नजाकत भरी अदाओं का मस्त नृत्य है। जब नृत्य पूरी मस्ती में आ जाता है तो उनमें से कोई एक स्त्री का रूप धरकर पुरुषों के साथ आँख–मटकाकर नाचता है। इसमें कुएँ से

पानी भरना, आशिकों का पानी पीना, प्रेमी–प्रेमिका की आपसी प्रेमभरी अदाओं को शामिल किया जाता है। इस प्रकार इसमें एक कलाकार के हर रंग को सामने लाया जाता है जो बाहरी और आंतरिक दोनों सौंदर्य को संतुष्ट करता है।

धमाल

धमाल वह नृत्य है जो भक्ति–रस में भीगा हुआ है और लहिंदा पंजाब (पश्चिमी पंजाब) के सूफी फक़ीरों की एक जाति 'जलाली' द्वारा ढोल की ताल पर मस्त होकर किया जाता रहा है। इस नृत्य पर इस्लाम का प्रभाव रहा है। जब वे अपने इष्ट को याद कर उसकी लौ में मग्न हो जाते हैं, तो ऊपर की ओर हाथ उठाकर तेज गति में विशेष प्रकार की शारीरिक लहरों के साथ घूमते हैं और भक्ति में लीन हो जाते हैं।

इसका सौंदर्य पक्ष यह है कि इसकी कोई बँधी–बँधाई शैली नहीं, बल्कि आंतरिक खुशी को कूद–फांदकर प्रकट किया जाता है। मध्यकाल में सूफियों के डेरों पर सूफी फक़ीरों द्वारा धमाल करने की परंपरा आम रही है। इस नृत्य को करने वाली जाति 'जलाली' के नाम पर ही इस नृत्य का नाम 'धमाली' पड़ गया। इसके साथ ढोल और चिमटा लय–ताल का काम करते हैं। इस नृत्य में किसी ख़ास परिधान की जरूरत नहीं होती, पर क्योंकि यह सूफियों जैसा वेश बनाकर खुले लंबे कुर्ते और चादरें पहनते हैं। परंतु यह अब उतना प्रचलित नहीं रहा और भांगड़े की एक चाल तक सीमित हो चुका है। इसलिए इसका परिधान भी भांगड़े जैसा ही है।इस तरह पंजाब के पुरुषों के लोक–नाच आन्तरिक ,वं बाहरी सौंदर्य के धनी हैं।

संदर्भ और टिप्पणियाँ

1. डॉ. ओ.पी. भारद्वाज, भारतीय सौंदर्यशास्त्र, पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला
2. सोहिंदर सिंह बेदी, पंजाब दी लोक–धारा, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, 1971
3. डॉ. कर्नैल सिंह थिंद, पंजाब दा लोक–विरसा, पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, 1961
4. जीत सिंह जोशी, पंजाब अध्ययन एवं अध्यापन, वारिस शाह फाउंडेशन, अमृतसर, 2004
5. डॉ. जगीर सिंह नूर, पंजाबी सभ्याचारक विरसा, पंजाबी साहित्य एवं संस्कृति सदन, फगवाड़ा, 1998
6. डॉ. सरोज चमन, सौंदर्यशास्त्र, पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, 2009
7. डॉ. नाहर सिंह, पंजाबी लोक–नाचरू सभ्याचारक भूमिका ते सार्थकता, लोकगीत प्रकाशन, सरहिंद, 1988
8. दलबार सिंह, मलवाई गिद्धा बनाम मर्दों दा गिद्धा, अमरजीत साहित्य प्रकाशन, पटियाला, 2008
9. डॉ. गुरबचन सिंह राहीं, किस्सा काव्य विच नाटकीयता, शोध पत्रिका (किस्सा काव्य विशेषांक), पंजाबी यूनिवर्सिटी, पटियाला, मार्च 1986
10. सुपनदीप कौर, पंजाबी पे.डू रंगमंच अते गुरशरण सिंह, जोन पब्लिकेशन्स, सरहिंद, (तिथि रहित/बिना वर्ष)
11. डॉ. रीता धनकर, हरियाणा तथा पंजाब की संगीत परंपरा, संजय प्रकाशन, दिल्ली, 2003
12. मोहन राहीं, पंजाब दे लोक–नाच दलबार पब्लिशिंग हाउस, अमृतसर, 1962
13. मोहिंदर सिंह, वनजारा बेदी, पंजाबी लोकधारा विश्वकोश, नेशनल बुकशॉप, दिल्ली, 1986 और 1991